ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(11): 354-360
www.allresearchjournal.com
Received: 12-09-2021
Accepted: 19-10-2021

ममता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ममता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

शिवमूर्ति के कथा साहित्य में पारिवारिक जीवन की अभिव्यक्ति

ममता कुमारी

सारांश
समकालीन कथाकारों में शिवमूर्ति एक ऐसे कथाकार हैं, जिसने उत्तर भारत के जन जीवन की समग्रता को अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में समेटता है। व्यक्तित्व से लेकर परिवार और समाज उनकी रचनाओं में अपने यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति हुआ है। उन्होंने रचनाओं के केन्द्र में किसी न किसी परिवार को अनिवार्य रूप से रखा है। उनकी कहानी, 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरितर', 'खब्जा, ओ मेरे पीर, 'केशर-कस्तूरी', 'कुच्ची का कानून' तथा उपन्यास 'त्रिशूल', और 'आखिरी छलांग' में उनकी पारिवारिक चेतना दृष्टिगत होती है। उनके पात्र लाख विपत्तियों के बाद भी अपने परिवार को नहीं छोड़ता है। निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर ये पात्र एक वफादार पारिवारिक सदस्य का उदाहरण बनता है। शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में अभिव्यक्त परिवार निश्चय ही अनुकरणी है।

कूट शब्द: शिवमूर्ति, समकालीन कथाकार, 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरितर', 'खब्जा, ओ मेरे पीर

प्रस्तावना
व्यक्ति से परिवार और परिवार से ही समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है। इसलिए मानव जीवन में परिवार की महत्ता अक्षुण्ण है। एक समय था, जब व्यक्ति में परिवार भावना का विकास नहीं हुआ था, जो खनादोश जीवन को जी रहे थे। बाद में ज्ञान और संवेदना का विकास हुआ तो इसके साथ ही परिवार की भावना भी विकसित हुई। उन्मुक्त यौन-संबंधों की स्थापना से संतान की उत्पत्ति तो की जा सकती थी, परंतु संतान के प्रति माता-पिता के दायित्व तथा माता-पिता के प्रति संतान के दायित्व का अनुपालन संभव नहीं हो सकता है और न ही किसी तरह की सामाजिक व्यवस्था कायम की जा सकती है। न ही किसी संस्कार या संस्कृति का संबर्द्धन किया जा सकता है।

जब लोगों ने परिवार की आवश्यकता महसूस की, तब विवाह जैसी संस्था का विकास हुआ। चूँकि परिवार के केन्द्र में वैवाहिक संस्था स्थित है। स्त्री-पुरूष के उन्मुक्त भोग पर अंकुश लगाने हेतु विवाह को अपरिहार्य माना गया। आरंभ में एकल विवाह के साथ ही बहु-विवाह तथा समूह-विवाह की परंपरा विकसित हुई। एकल विवाह में एक-स्त्री का विवाह एक पुरूष के साथ कराया जाता है। उन्हें यौन-संबंध स्थापित करने का सामाजिक अधिकार दिया जाता है। साथ ही उनके संसर्ग से उत्पन्न संतान को सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान की प्राप्ति होती है। बहु-विवाह में एक ही स्त्री का अनेक पुरूषों का विवाह कराया जाता है। इनके भी उत्पन्न संतान सामाजिक प्रतिष्ठा का अधिकारी माना जाता है। समूह-विवाह में एक निश्चित स्थान पर रहने वाले अनेक

स्त्रियों के साथ वहाँ की अनेक स्त्रियों का विवाह कराया जाता है, जिसमें सभी पुरूष सभी स्त्री के पति तथा सभी स्त्री सभी पुरूष की पत्नी मानी जाती हैं। यहाँ भी इन संबंधों से उत्पन्न संतानों को वैध माना जाता है।

विवाह को लेकर भारतीय तथा पाश्चात्य मान्यताओं में पार्याप्त मतभेद हैं। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है। संतान की उत्पत्ति ही इसका सर्वप्रमुख उद्देश्य है, तथापि पाश्चात्य मान्यताओं के अनुसार यह धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, वरन एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके तहत एक स्त्री तथा एक पुरूष को शारीरिक संबंध स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान करता है। साथ ही पाश्चात्य दृष्टि इस मान्यता का भी निषेध करता है कि विवाह का उद्देश्य संतानोत्पत्ति है। इसके अनुसार स्त्री और पुरूष अपनी यौन-तृप्ति के लिए विवाह करते हैं। संतान की उत्पत्ति या वंश का विकास यहाँ द्वितीयक उद्देश्य है।

यूँ तो भारतीय संदर्भ में भी इसे लोग स्वीकारने लगे हैं कि संतानोत्पत्ति के बजाय यौन-सुख ही विवाह का प्रथम तथा केन्द्रीय उद्देश्य है। अगर ऐसा नहीं होता तो फिर वे लोग किसलिए विवाह करते, जिन्हें पहले से संतान हैं ही। या एक पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करना निश्चय यौन-तृप्ति की आकांक्षा को अभिव्यक्त करता है।

भारत में दो तरह के परिवार मिलते हैं- एक मातृसत्तात्मक और दूसरा पितृसत्तात्मक परिवार। जिस परिवार में माता का अधिप्तय हो उसे मातृसत्तात्मक परिवार तथा जिसमें पिता की सत्ता हो, उसे पितृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। यहाँ दोनों का संक्षिप्त वर्णन अपेक्षित है-

1) मातृसत्तात्मक परिवार:

मातृसत्तात्मक समाज आदिम समुदायिक व्यवस्था का वह रूप है, जिसमें सामाजिक उत्पादन से लेकर परिवार के संचालन तक सभी मामलों में नारी की निर्णायक भूमिका होती थी। वास्तव में परिवार के इतिहास का अध्ययन सन् 1961 से आरंभ हुआ, जब बाखोफेन की पुस्तक 'मातृसत्ता' प्रकाशित हुई। इस रचना में लेखक ने पहली बार नीचे लिखी महत्त्वपूर्ण स्थापनाओं को प्रस्तुत किया।

1) मानवजाति के आरंभ में यौन-स्वच्छंदता पायी जाती थी।
2) इस स्वच्छंदता के कारण किसी के भी बारे में निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता था कि उसका पिता कौन हैं इसलिए वंश के विकास माता के नाम से मातृसत्ता के नियमों के अनुसार ही चल सकता था और शुरू में प्राचीनकाल की सभी जातियों में यह बात पायी जाती थी।
3) चूँकि नयी पीढ़ी को केवल माताओं के बारे में ही निश्चय हो सकता था, इसलिए स्त्रियों का बहुत आदर-सम्मान किया जाता था। यह सम्मान बढ़ गया था कि पूरा शासन ही स्त्रियों के हाथ में था।

बाखोफेन की पुस्तक पर 'फ्रेडरिक संगोल्स' की टिप्पणी है- "उसने साबित कर दिखाया कि शुरू में चूँकि बच्चों का केवल माता के बारे में निश्चय हो सकता था, इसलिए माता का और आमतौर पर स्त्रियों का समाज में इतना ऊँचा स्थान था, जितना कि उनको बाद में कभी नहीं मिला [1]।"

बाखोफेन की स्थापनाओं की पुष्टि अपने लगभग चालीस वर्ष के गंभीर अध्ययन के बाद मार्गन ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन समाज' में की। उसने यह प्रतिपादित किया कि मानव-समाज के प्रारंभिक दौर में यौन-स्वच्छंदता और मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। मार्गन ने वैवाहिक संबंधों पर पहली बार भौतिकवादी दृष्टि से विचार किया। उसके अनुसार जंगल युग की यौन-स्वच्छंदता के बाद सभ्यता के विकास के दौर से विवाह का पहला रूप समूह विवाह का मिलता एगेल्स ने वेस्टर मार्क एस्पिनास एवं ए. जिरोत्यूलों की स्थापनाओं का हवाला देते हुए स्पष्ट किया है कि "सचमुच परिवार का सबसे पुराना रूप, सबसे आदिम रूप कौन-सा है, जिसका इतिहास में अकाट्य प्रमाण मिलता है और जो आज भी कहीं-न-कहीं देखने में आता है? वह है यूथ विवाह का रूप, जिसमें पुरूषों के एक पूरे दल का नारियों के एक-पूरे दल के साथ संबंध होता है।"

इसके बाद की अवस्था में एक पुरूष का एक ही स्त्री से विवाह तो होता था, पर उसी परिवार में ब्याही हुई स्त्रियों के साथ यौन-संबंध स्थापित करने की आजादी प्रत्येक पुरुष को रहती थी। मॉर्गेन की इस स्थापना का भी समर्थन एस्पिनास और बेस्टर मार्क जैसे विद्वानों के किया है।

कालांतर में व्यक्तिगत संपत्ति के उदय के साथ ही एकनिष्ठ परिवार का अभ्युदय हुआ। एकनिष्ठ परिवार परूष की सर्वोतम सत्ता पर आधारित होता है, जिसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे बच्चे को पैदा करना होता है, जिसका वंशीयत के बारे में कोई विवाद न हो और जो उसकी संपत्ति और एकनिष्ठ विवाह के उदय के साथ नारी का सारा अधिकार छिन गया और इतिहास से मातृसत्तात्मक व्यवस्था का अंत हो गया।

फ्रेडरिक ऐंगेल्स के अनुसार, "मातृ-अधिकार के अनुसार, यानी जब तक कि वंश केवल स्त्री-परंपरा के अनुसार चलता रहा

और गोत्र की मूल अधिकर प्रथा के अनुसार गोत्र के किसी सदस्य के मर जाने पर उसकी सपत्ति उसके गोत्र के संबंधियों को मिलती थी। यह आवश्यक था कि संपत्ति गोत्र के भीतर ही रहे। शुरू में चूँकि सपत्ति साधारण होती थी, इसलिए संभव है कि व्यवहार में वह सबसे नजदीकी गोत्र संबंधियों को यानी माँ की तरह के रक्त संबंधियों को मिलती रही हो [2]।"

जैसे-जैसे संपत्ति बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इसके कारण एक और परिवार के अंदर नारी की तुलना में पुरूष का दर्जा ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता गया और दूसरी ओर पुरूष के मन में यह इच्छा जोर पकड़ती गयी कि उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को हो सके।

स्त्रीवादी अध्ययनों में इस सिद्धांत की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि इसके सहारे यह प्रमाणित किया जाता है कि पुरुषों की सत्ता हमेशा से विद्यमान नहीं रही है, बल्कि काल-क्रमानुसार ऐतिहासिक क्रम मे तब्दील हुई है, जिसे स्त्री-स्वतंत्रता के लिए एक ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में भी माना जा सकता है।

2) पितृसत्तात्मक परिवार:

पितृसत्ता एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें पुरूषों की प्राथमिक सत्ता होती है यानी उन्हें समाज में उच्च माना जाता है। राजनैतिक नेतृत्व, नैतिक अधिकार, सामाजिक सम्मान, संपत्ति का नियंत्रण की भूमिकाओं में प्रबल होते हैं। परिवार के क्षेत्र में पिता या अन्य पुरूष महिलाओं और बच्चों के ऊपर अधिकार जमाते हैं। इस व्यवस्था में स्त्री तथा पुरूष को समाज द्वारा दिये गये कार्यों के अनुसार चलना पड़ता है। धर्म, समाज व रूढ़िवादी परंपराएँ पितृसत्ता को अधिक ताकतवर बनाती है। सदियों से महिलाएँ पितृसत्ता के कारण उत्पीड़ित हो रही हैं। पिता ही घर के ठेकेदार होते हैं पिता से ही घर होता है।

परिवारों में पितृसत्ता अलग प्रकार के होते हैं, पर सभी प्रकार के परिवारों में पितृसत्ता प्रचलित होती है। परिवार में व्यसकों के यौनिक संबंधों को एक सामाजिक रूप से स्वीकार कर लिया जाता है।

1) कुटुम्बों के प्रकार: एक परिवार और संयुक्त परिवार एकल परिवार एकल परिवार वह परिवार होता है; जिनमें ज्यादातर केवल तीन या चार लोग होते हैं; माता-पिता और उनके बच्चे। यह विवाहित जोड़ों पर केन्द्रित होता है। अवधि एकल परिवार यह शब्द सब से पहली बार 20वीं सदी में दिखाई दिया। संयुक्त परिवार सदियों से प्रचलित हैं। कोई व्यक्ति अपने जीवन में दो एकल परिवारों का हिस्सा होते हैं, और दूसरे वो जिसमें शादी करके अपना घर बसाते हैं। औद्योगीकरण और पूँजीवाद के उद्भव के साथ, एकल परिवार एक आर्थिक रूप से व्यवहार्य सामाजिक इकाई बन गया। संयुक्त विवाह वह होता है, जिनमें साधनों का सांप्रदायकि प्रयोग करते हैं, जैसे एक विवाहित जोड़ा जब अपने माता-पिता और कभी भाई बहनों के साथ रहते हैं। भारत में संयुक्त परिवार एक परंपरा है। अभी देश के बहुत जगहों में सयुंक्त परिवार मौजूद है। बड़े-बड़े शहरों को छोड़ के सारे गाँवों में और सारे छोटो शहरों में संयुक्त परिवार ही मौजूद हैं। ऐसे परिवार एक अधिपति के नेतृत्व में होते हैं। "वो पुरूष सभी निर्णय करता है। पारिवारिक आय उनकी नियंत्रण में हैं। अधिपति की धर्मपत्नी पारिवारिक निर्णय लेने में सक्षम होती है। शहरीकरण ओर आर्थिक विकास के कारण भारत में संयुक्त परिवारों की संख्या कम होती जा रही है [3]।" कभी-कभी एक ही कुटुम्ब में कई पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते पाये जाते हैं। कुछ समाजों में संयुक्त परिवारों को एकल परिवारों से बेहतर माना जाता है, क्योंकि इन परिवारों में एकजुटता का भाव ज्यादा होता है, और साथ ही साथ सांस्कृतिक नियमों और मूल्यों का बेहतर तरीके से प्रचलन होता है। संयुक्त परिवारों में परिवार के संबंधों को वैवाहिक संबंधों की तुलना में अधिक महत्त्व दिया जाता है।

"एक संयुक्त परिवार में आमतौर पर एक कुलपति (सबसे प्रौढ़) का नेतृत्व होता है। इस व्यवस्था को पितृसत्ता कहते हैं। ऐसे घरों में पुरूष प्रधान होता है, वही परिवार का पालन-पोषण करता है। संयुक्त परिवारों के बनिस्वत एकल परिवारों में पितृसता की अभिव्यक्ति पाए जाते हैं [4]।"

भारतीय समाज में परिवार की स्थापना के लिए स्त्री-पुरूष संबंध अपरिहार्य माना जाता है। स्त्री से ही वंश का विकास होता है और परिवार का निर्माण किया जाता है। समाज में घटित विभिन्न घटनाओं के कारण नारी-आंदोलन से एक निश्चित उद्देश्य प्राप्त हुआ है। उसमें तद्युगीन रचनाकारों-कथाकारों की भूमिका सराहनीय रही है। रचनाकारों ने अपने साहित्य के बहानों स्त्री को उनके अधिकारों से परिचित करवाया, इसमें सबसे पहला एवं महत्त्वपूर्ण नाम 'सिमोन द वोअवार' का आता है, जिसने अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' स्त्री संबंधित कई महत्त्वपूर्ण विचारों को अभिव्यक्त करती हुई दिखाई पड़ती है। जैसे औरत गुलाम क्यों हैं? औरत की नीति क्या है, वे शिक्षा के अधिकारा से वंचित होकर, लिंग भेद की शिकार हो गई है। 19वीं सदी जो सुधार आंदोलन शुरू हुए, उनमें स्त्रियों की दशा को सुधारने की कोशिश की गई है।

किन्तु पुरूष, के संदर्भ में स्त्री-समानता की बात नहीं की गई। जब हम सामाजिक सत्ता के बदलाव को रेखांकित करने की बात करते हैं तो सबसे पहले हमें समस्याओं के रेखांकन पर कार्य करना होता है। यही कारण है कि शिवमूर्ति के उपन्यासों तथा कहानियों में हमें सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति का विस्तार मिलता है। शिवमूर्ति के कथा-साहित्य जाति, धर्म से संबंधित समस्याओं के रेखांकन के साथ-साथ स्त्री-विमर्श तथा अनेक तरह की पारिवारिक समस्याओं का उद्घाटन किया गया है। उनका स्त्री-चिंतन समाज के उन निम्नवर्गीय परिवारों की स्त्रियों के शारीरिक व आत्मीय सौन्दर्य, दैहिक ताप व उत्पीड़न, जिजीविषा, प्रतिरोध, रागद्वेष पारिवारिक क्लेश आदि पर आधृत हैं जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तरों पर पुरूषवादी सत्ता का शिकार बनती रहती हैं। घर, गाँव, समाज की सीमाओं में कैद होकर अपना जीवन गुजार रही है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज में जो घटनाएँ घटित होती हैं उसका जीवंत तथा यथार्थपूर्ण चित्रण साहित्य में किया जाता है। इस बात को हम ग्राम्य-चेतना के प्रखर कथाकार शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में बखूबी देख सकते हैं। शिवमूर्ति को एक आंचलिक कथाकार के तौर पर मर जाना समझा जाता है। तथापि इससे भी बड़ी बात यह है कि वे क संवेदनशील कथाकार हैं, उन्होंने अत्यंत सूक्ष्मता के साथ भारत के ग्रामीण परिवारों का चित्रण किया है। खासकर नवें के दशक में जो सामाजिक परिवर्तन आए, जिससे समाज में अत्यंत व्यापक परिवर्तन आया, उसकी जीवंत अभिव्यक्ति है शिवमूर्ति का कथा-साहित्य।

समकालीन कथा साहित्य में शिवमूर्ति ग्रामीण परिवेश को जिस जीवंतता के साथ उद्घाटित किया है। उसे देखकर ऐसा परिलक्षित होता है कि सारी की सारी घटनाएँ हमारे सामने घटित हो रही हैं। शवमूर्ति कैसे जाति, धर्म, यौन-शुचिता, चरित्र आदि पुरूषों के वर्चस्व को कायम रखने के लिए झूठी शान, इज्जत के बोझ तले दबे हुए भरपूर ग्रामीण-स्त्रियों की मनोदशा को पाठकों के सामने पेश करते हैं। अपने अधिकारों और अपनी अस्मत के प्रति सजग हुई निम्नवर्गीय स्त्रियाँ कैसे समाज के सामने सशक्त होती दिखाई देती है।

यह सब शिवमूर्ति की कहानी और उपन्यासों में प्रमुखता के साथ देख सकते हैं। शिवमूर्ति का संपूर्ण कथा-साहित्य दलित-किसान, स्त्री एवं निम्नवर्ग की आवाज बनकर उपस्थित होता है, जिनमें मुख्य तौर पर स्त्री-जीवन को स्थान मिला है, फिर चाहे वह 'त्रिशूल', 'तर्पण', तथा 'आखिर छलांग' उपन्यास हो या फिर 'केशर कस्तूरी' तथा 'कुच्ची का कानून' कहानी संग्रह वे अपने कथा-साहित्य में पुरूष की शोषण-नीति, उनकी भोगवादी प्रवृत्ति पूरे समाज के सामने उभारकर लाते हैं। उनके कथा-साहित्य में पात्रों का चरित्र-चित्रण हमेशा जीवंत लगता है। इसमें अनपढ़ गरीब, विस्थापित बाल-ब्याहता, श्रमिक, शोषित व उपेक्षित वर्ग की साधारण स्त्रियों का जिंदगीनामा है, जिसमें न हार की फिक्र है, न जीत की खुशी, बस संघर्ष ही संघर्ष है। वेदना ही वेदना है। शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' हो या 'तिरिया चरित्तर' से लेकर 'आखिरी छलांग' तक जो परिदृश्य है। वह समकालीन पुरूष-समाज वर्ग कर यथार्थ रूप है। परिवार, थाना, कोर्ट, कचहरी, स्त्री, दलित, किसान, धर्म, सांप्रदायिकता, खेती नौकरी सबसे जो एक समग्र चित्र निर्मित होता है, वह असुंदर और दागदार है। सभी जगह इन्सान रूपी खाल में खूंखार भेड़िये छिपे नजर आते हैं। चाहे वह घर-परिवार हो या गाँव-समाज इसका यथार्थपूर्ण चित्रण शिवमूर्ति की रचनाओं में प्राप्त हो जाता है। खासकर भारतीय परिवार के बारे में अत्यंत सक्ष्म स्तर पर लेखक का वर्णन-विवेचन प्राप्त होता है। शिवमूर्ति की कहानी का पात्र बहुत ही संघर्षवादी होते हैं। वह न्याय के लिए आखिरी साँस तक लड़ते हैं। 'तर्पण' नामक उपन्यास में सदियों से पोषित हिन्दू-समाज की वर्णाश्रम-व्यवस्था से संबद्ध मानसिकता के विरोधी स्वरों के तानों-बानों से पूरा औपन्यासिक ढाँचा खड़ा किया गया है। यहाँ बड़ी संजीदगी से इस बात को रखा गया है कि कानून द्वारा पोषित 'हिरजन एक्ट' केवल दलित अस्मिता को ही संबल प्रदान नहीं करता, बल्कि यह नए सिरे से ग्रामीण जीवन-समाज में स्वर्ण-दलित की गोलबंदी को तीव्र करता है। 'स्वर्ण द्वारा दलित स्त्री से ब्लात्कार की घटना जहाँ एक तरफ सदियों पुरानी ग्रामीण समाज-व्यवस्था को दर्शाता है, वही राजपतिया के बलात्कार का विरोध करती ग्रामीण दलित स्त्रियों की छवि ग्रामीण-जीवन के बदलते हुए स्वरूप और मानसिकता को रेखांकित करता है। तर्पण में दलित-शोषित-पीड़ित वर्गों की उस मनोदशा को दर्शाती है जो सदियों से वे लोग इस अत्याचार, दुर्व्यवहार का शिकार हुए हैं। इस उपन्यास में रजपतिया भाईजी, घरमु पंडित, पंडिताईन पियारे, आदि जैसे निम्नलिखित पात्रों के चरित्र के साथ-साथ अवध का एक गाँव अपने भौगोलिक सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों को अपने में समाया हुआ है। राजपतिया के पिता पियारे पंडिताइन के जबाब में स्पष्ट कहता है- "किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन! अब हम ऊ चमार नहीं है, कि कान, पूँछ दबाकर सह, सुन लेंगे चिऊँटे को गुड़ का मजा लेना, मँहगा कर देंगे [5]।" इससे साफ पता चलता है कि अब दलितों में भी चेतना

का विकास हुआ है। वह भी अपने मान-सम्मान की रक्षा के लिए सवर्णों से लड़ना-भिड़ना आरंभ कर दिया है। यह उपन्यास दलित-शोषित वर्गों की उस मानसिकता को दर्शाता है जो सदियों से अभिशप्त है और प्रतिवाद के लिए तैयार है।

शिवमूर्ति के उपन्यासों में चाहे जो भी समस्या केन्द्रीय रही हो, उसके भीतर परिवार है, पारिवारिक चेतना है। समन्वय और सहयोग का भाव है, प्रेम है, भाईचारा है। उन्होंने यद्यपि अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में देश की सांप्रदायिक राजनीति को आधार बनाया है, तथापि वहाँ भी अभिशप्त होता है एक परिवार। लेखक ने स्पष्ट किया है कि इस दौर में कैसे लोगों ने अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए मंडल और कमंडल का गेम खेला जाता है। हमारे ही देश के नेताओं द्वारा भोली-भाली जनता कैसे आपस से लड़ते-भिड़ते रहते हैं? त्रिशूल उपन्यास में सांप्रदायिकता और जातिवाद की आड़ में घृणित राजनीति करने वाली मानसिकता साफ दिखाई पड़ती है। त्रिशूल उपन्यास के शुरूआत में ही साफ होने लगा है- "कहा से शुरू करूँ महमूद की कहानी? वहाँ से जब पुलिस उसे घसीट कर ले जा रही थी...या जब इसी चौराहे पर वे लोग उसके छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, "बोलो साले- जय श्री राम।" आज समाज में धर्म, जाति और संप्रदाय के ठेकेदार किस प्रकार नफरत फैलाने का कार्य कर रहे हैं। महमूद जैसे गरीब इंसान के लिए एक ही धर्म होता है। वह है- अपनी अस्तित्व को जिंदा रखने का धर्म। इस प्रकार देख जाय तो शिवमूर्ति का उपन्यास समाज के संकट जातिवाद संप्रदायवाद तथा परिवारवाद की हीन राजनीति का ही आख्यान रचना है।

शिवमूर्ति की अत्यंत चर्चित कहानी 'कसाईबाड़ा' की स्त्री-पात्र शनीचरी की बेटी को गाँव के प्रधान द्वारा सामूहिक विवाह के नाम पर देह-धंधा के व्यापार में धकेल दिया जाता है। शनीचरी को पता चलता है कि उसकी बेटी समेत गाँव की अनेक बेटियों को शहर के लोगों के हाथों बेच दिया गया है, तो वह अपनी बेटी के लिए अनशन करती है। धरना देती है। वह थानेदार के पास जाती है। वहाँ भी उसे अपमानित होना पड़ता है। जिस समाज में प्रधान जैसे दरिंदा होगा, उस समाज में शनीचरी भी होगी-बेवश, लाचार सब कुछ सह जाने को अभिशप्त। आखिरकार वहीं होता है जो होना था। गाँव का लीडर शनीचरी से एक स्टाम्प पेपर पर अगूँठा लगवाता है, शनीचरी चोरबत्ती की रोशनी में कागज को देखती है- "ई तो कचहरी बाला कागज है बेटवा, ऊपर की ओर रूपया जैसी छाप-बनी है। [6]" लीडर कहता है कि मुख्यमंत्री के पास तुम्हारी फरियाद लिखकर भेज रहे हैं, तो वहाँ सादा कागज नहीं भेजा जाता। शनीचरी उस पर अंगूठा लगा देती है। अंत में दूध में जहर मिलाकर उसका उपवास तुड़वाया जाता है। शनीचरी का अंत होता है और यह बात फैलती है कि शनीचरी की सारी संपत्ति का मालिकानाहक लीडर को है।

अपनी पुत्री की रक्षा के लिए संघर्ष करती हुई शनीचरी का अंत व्यवस्था का अंत है। न्याय दिलाने के नाम पर ढोग का पर्दाफाश करने में कहानी अत्यंत समर्थ हैं- लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि मंचों पर जन-कल्याण की बात करने वाले लोगों के का शनीचरी जैसे लोग इस त्रासद स्थिति को भोगने को मजबूर है।

शिवमूर्ति की एक प्रसिद्ध कहानी है- 'तिरिया चरित्तर।' इस कहानी की नायिका या केन्द्रीय चरित्र विमली है। विमली पर उसके ससुर की कुदृष्टि है, जिसके कारण परिवेश की सारी शुचिताएँ तार-तार हो गई हैं। लेकिन अंतत: पंचायत के माध्यम से विमली को ही चरित्रहीन सिद्ध किया जाता है और उसे भरे पंचायत में दाग दिया जाता है। शिवमूर्ति का यह कहानी उन तमाम परतों को खोलती है, जिसमें स्त्री के लिए परिस्थितियाँ, मान्यताएँ दिखाई पड़ती हैं। विमली उन तमाम मूल्यों को अंत तक ढोती है, जिनमें स्त्री के चरित्र और उसकी यौन-शुचिता की मांग करने वाला समाज संतुष्ट हो सके, लेकिन ऐसा होता नहीं है। अंतत: उसे तिरिया-चरित्तर की उस परिभाषा में जड़ दिया जाता है, जिसमें पुरूष के तमाम दोषों को समेटकर स्त्री के पक्ष को नकारात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है।

'कुच्ची का कानून' में भी एक परिवार हैं। संपत्ति के अधिपत्य और उत्तराधिकार का संघर्ष है। कहानी में गाँव की एक विधवा स्त्री की स्थिति को दर्शाया गया है जो पति के मरने के बाद जेठ की नजर उसकी संपत्ति पर टिक जाती है। पुरूष होने के नाते वह उस संपत्ति पर अपना दावा करने लगता है, क्योंकि भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता है। शिवमूर्ति गाँव जैसे सामंती माहौल में कुच्ची जैसी सशक्त स्त्री पात्र को खड़ा करते हैं जो अपने लिए सवयं कानून का गढ़ती है। वह भरी पंचायत में यह घोषणा करती है कि उसके गर्भ में गैर-पुरूष का बच्चा पल रहा है। 'कुच्ची एक आजी! कुच्ची खड़ी होती है- "कुंती मांई डर गई, अंजनी माई डर गई, सीता माई जी डर गई, लेकिन बाल किसन की माई डराने वाली नहीं है। मेरा बाल किसन पैदा होकर रहेगा [7]।"

ऐसा साहस भारतीय ग्राम-व्यवस्था में जीने वाली स्त्रियों में अक्सर नही देखा जा सकता है, किन्तु कुच्ची जैसी पात्र के

द्वारा शिवमूर्ति इस मान्यता को तोड़ते हैं। गाँव की स्त्री केवल अबला होती है। कुच्ची 'तिरिया चरित्तर' विमली की तरह स्वाभिमानी है, लेकिन इस बार वह विमली की तरह पंचायत को खूनी बार-शिकार नहीं होता। गाँव, समाज के सारे नियम-कानून को ताख पर रखकर कुच्ची अपने कोख पर अपना अधिकार मानते हुए बच्चे को जन्म देने के लिए पंचायत में बहुत ही सशक्त तरीके से तोड़ती है। यह साबित करती है कि स्त्री का शरीर उसकी कोख में पल रहे बच्चे पर पुरूष से ज्यादा अधिकार महिला का होता है। हमारे समाज में यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है कि पुरूष को अपने शरीर पर अधिकार होने के साथ-साथ पत्नी के शरीर पर भी अपना पूर्ण अधिकार नहीं है। शिवमूर्ति की इस कहानी 'कुच्ची का कानून' से यह मिथ ध्वस्त होता है। वह स्थापित करती है कि स्त्रियों को अपने शरीर पर उतना ही अधिकार है, जितना कि पुरूषों को अपने शरीर पर है। यह कहानी यद्यपि एक परिवार की है, परंतु इसमें स्त्री-विमर्श संबंधी गंभीर सवाल खड़े किये गए हैं। कोख पर अधिकार की मांग पूर्व में भी उठती रही हैं, किन्तु भारतीय ग्रामीण सामंती व्यवस्था के संदर्भ में इन प्रश्नों को कभी नहीं उठाया गया।

शिवमूर्ति की कहानी 'अकाल दंड' में गरीबी और विपन्नता में घुँसे एक परिवार का वर्णन किया गया है, जिसमें सुरजी केन्द्रीय चरित्र है। परित्यक्त होने के बाद सुरजी अपने-अपने परिवार की रक्षा, हेतु, संघर्ष करती है। वह अपनी वृद्ध और अंधी सास की सेवा करती है। वह स्वयं भूखी रहती है, परंतु सास के खाने-पीने का इंतजाम करती है। सुरजी पर उसके आसपास के कई पुरूष की गिद्ध दृष्टि रहती हैं। इसमें सिकरेटरी बाबू का नाम सर्वोपरि है। वह सुरजी के मान-हरण की पुरजोर कोशिश करता है पर अंतत: हार जाता है। सुरजी उसका लिंग शरीर से अलग कर देती है। यह कहानी यद्यपि स्त्री के प्रति पुरूष की शोषणवादी नीति से प्रतिवाद करती नजर आती है, तथापि लेखक ने कहीं न कहीं उसकी परिवार-भावना को भी उजागर किया है। सुरजी भूखी रह सकती है, लेकिन अपना इज्जत बेचकर नहीं जी सकती। वह सिकरेटरी ने विनम्र स्वर में कहती है- "काहे आपकी नहीं भरिस्ट भई है सिकरेटरी बाबू। हम गरीबन का भी दुनिया मा इज्जत-आबरू के साथ परा रहे देवा हाथ जोड़ित हैं। चले जाव [8]।"

इस तरह वह अपने मान-सम्मान की रक्षा के लिए अंत-अंत तक लड़ती रह जाती है। सिकरेटरी के तमाम मंसूबों पर ही पानी नहीं फेरती, बल्कि तमाम स्त्री-जाति को संदेश भी देती है कि कैसे अपने ईज्जत-आबरू की रक्षा की जा सकती है।

परिवार-भावना से लबालब शिवमूर्ति की एक कहानी है- 'सिरी उपमा जोग'। इस कहानी में एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें वासना लोलुप परूष के कारण प्रथम पत्नी और उसके संतान की दारूण स्थिति को उजागर किया गया है। कहानी में एक स्त्री लालू की माँ है जो बहुत मेहनत करके अपने पति को आए.ए.एस. बनाती है, लेकिन सफलता मिलने के बाद ही लालू के पिता सबकुछ भूलकर एक नयी शादी करके शहर में स्थापित हो जाते हैं। पीछे छूट जाती है लालू की माँ और उसके अबोध बच्चे। लालू की माँ की सबसे बड़ी समस्या है बेटी का विवाह। वह जहाँ भी रिश्ते के लिए जाती है, वहाँ से उन्हें बैरंग लौटना पड़ता है, क्योंकि समाज में यह बात फैली है कि वह बेटी अपने पिता की औरस संतान नहीं है। वह नाजायज औलाद है। हारकर लालू की माँ अपने पति को चिट्ठी भेजती है कि वह उसे अपनी बेटी होने को प्रमाणित कर दे, तथापि लालू चिट्ठी लेकर जाता तो है, पर वह वापसे नहीं लौट पाता है उसकी हत्या हो जाती है [9]।

कहानी अत्यंत त्रासद स्थिति को उद्घाटित कर पुरूष की बेवफाई को रेखांकित करती है। और साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि किस तरह पुरुष की इस मानसिकता के कारण परिवार उजड़ जाता है।

शिवमूर्ति ग्रामीण चेतना के ख्यात रचनाकार हैं। उन्हें ग्रामीण समाज में पल रहे परिवार का बखूबी ज्ञान था। यही कारण है कि उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में परिवार का सत्यपरक चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष:

शिवमूर्ति के कथा-कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ अंकन मिलता है। इस जीवन की विराटता को अंकित करने के लिए लेखक किसी न किसी परिवार के केन्द्र में रखा है। उनकी कहानियों में अक्सर हाशिये के लोग और हाशिये का परिवार का उल्लेख मिलता है, लेकिन यह अच्छी बात है कि उनके स्त्री-पुरुष पात्र अत्यंत ईमानदार, मेहनती, और परिवार-भावना से युक्त दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण के लिए शिवमूर्ति की चर्चित कहानियाँ- 'तिरिया चिरत्तर', 'सिरी उपमा जोग' कसाईबाड़ा, 'केशर-कस्तूरी' तथा उपन्यासों मे आखिरी छलांग का गहन अवलोकन किया जा सकता है। इनकी रचनाओं में सभी तरह के पारिवारिक संबंधों की यथार्थ व्यंजना हुई हैं।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. हिन्दी साहित्यकोश-भाग-1, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान्मंडल प्रकाशन, वाराणसी, संस्क. 2009ई. पृ. 619
2. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012ई. पृ. 275
3. वही, पृ. 276
4. हिन्दी जाति का विकास-सत्यकेतु, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006ई. पृ. 205
5. तर्पण-शिवमूर्ति- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010ई. पृ.11
6. त्रिशूल-शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001ई. पृ. 03
7. केशर-कस्तूरी-शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991ई. पृ.17
8. कुच्ची का कानून-शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017ई. पृ.97
9. केशर कस्तूरी-शिवमूर्ति, पृ. 36